पउमचरियं : एक सर्वेक्षण

(रामकथा का प्राचीन एवं उत्कृष्ट जैनग्रन्थ)

- **प्रो. सागरमल जैन**

रामकथा की व्यापकता

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के प्राण-पुरुष रहे हैं । उनके जीवन, आदर्शो एवं उपदेशो ने भारतीय संस्कृति को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है । भारत एवं भारत के पूर्वी निकटवर्ती देशो में आज भी राम-कथा के मंचन की परम्परा जीवित है । हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म परम्परा में राम-कथा सम्बन्धी प्रचुर उल्लेख पाये जाते है । राम-कथा सम्बन्धी ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण प्राचीनतम ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ हिन्दू परम्परा में प्रचलित राम-कथा का आधार ग्रन्थ है । इसके अतिरिक्त संस्कृत में रचित पद्मपुराण और हिन्दी में रचित रामचरितमानस भी राम-कथा सम्बन्धी प्रधान ग्रन्थ है, जिन्होंने हिन्दू जन-जीवन को प्रभावित किया है । जैन परम्परा में रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों में प्राकृत भाषा में रचित विमलसूरि का 'पउमचरियं' एक प्राचीनतम प्रमुख ग्रन्थ है । लेखकीय प्रशस्ति के अनुसार यह ई. सन् की प्रथम शती की रचना है । वाल्मीकि की रामायण के पश्चात् रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों में यही प्राचीनतम ग्रन्थ है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में रचित रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ इसके परवर्ती ही है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कन्नड़ एवं हिन्दी में जैनों का रामकथा सम्बन्धी साहित्य विपुल मात्रा में है, जिसकी चर्चा हम आगे विस्तार से करेंगे । बौद्ध परम्परा में रामकथा मुख्यतः जातक कथाओं में वर्णित है । जातक कथाएँ मुख्यतः बोधिसत्त्व के रूप में बुद्ध के पूर्वभवों की चर्चा करती है । इन्हीं में दशरथ जातक में रामकथा का उल्लेख है । बौद्ध परम्परा में रामकथा सम्बन्धी कौन-कौन से प्रमुख ग्रन्थ लिखे गये इसकी जानकारी का अभाव ही है ।

रामकथा सम्बन्धी जैन साहित्य :

जैन साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना

की है, इनमें दिगम्बर लेखकों की अपेक्षा श्वेताम्बर लेखक और उनके ग्रन्थ अधिक रहे हैं । जैनों में रामकथा सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ कौन से रहे हैं, इसकी सूची निम्नानुसार है —

क्र.	ग्रन्थ	लेखक	भाषा	काल
१	पउमचरियं	विमलसूरि (श्वे.)	प्राकृत	प्रायः ईसा की दूसरी शती
२	वसुदेवहिण्डी	संघदासगणि(श्वे.)	प्राकृत	ईस्वीसन् ६०९
३	पद्मपुराण	रविषेण (दि.)	संस्कृत	ईस्वीसन् ६७८
४	पउमचरिउ	स्वयम्भू (दि.)	अपभ्रंश	प्रायः ई.सन् ८वीं शती (मध्य)
५	चउपन्न-महापुरिसचरियं	शीलाङ्क (श्वे.)	प्राकृत	ई. सन् ८६८
६	उत्तरपुराण	गुणभद्र (दि.)	संस्कृत	ई.सन् प्राय ९वीं शती
७	बृहत्कथाकोष	हरिषेण (दि.)	संस्कृत	ई.सन् ९३१-९३२
८	महापुराण	पुष्पदन्त (दि.)	अपभ्रंश	ई. सन् ९६५
९	कहावली	भद्रेश्वर (श्वे.)	प्राकृत	प्रायः ई.सन् ११वीं शती
१०	त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित	हेमचन्द्र (श्वे.)	संस्कृत	प्रायः ई.सन् १२वीं शती
११	योगशास्त्र-स्वोपज्ञ वृत्ति	हेमचन्द्र (श्वे.)	संस्कृत	प्रायः ई.सन् १२वीं शती
१२	शत्रुञ्जयमाहात्म्य	धनेश्वरसूरि(श्वे.)	संस्कृत	प्रायः ई.सन् १४वीं शती
१३	पुण्यचन्द्रोदय-पुराण	कृष्णदास (दि.)	संस्कृत	ई.सन् १५२८
१४	रामचरित	देवविजयगणि(श्वे.)	संस्कृत	ई.सन् १५९६
१५	लघुत्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित	मेघविजय (श्वे.)	संस्कृत	ई.सन् की १७वी शती

इनमें एकाध अपवाद को छोडकर शेष सभी ग्रन्थ प्रायः प्रकाशित है । इनके अतिरिक्त भी रामकथा सम्बन्धी अनेक हस्तलिखित प्रतियों का

उल्लेख जिनरत्नकोश में मिलता है, जिनकी संख्या ३० से अधिक है । इनमें हनुमानचरित, सीताचरित आदि भी सम्मिलित है । विस्तारभय से यहां इन सबकी चर्चा अपेक्षित नहीं है । आधुनिक युग में भी हिन्दी में अनेक जैनाचार्यों ने रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है । इनमें स्थानकवासी जैन संत शुक्लचन्द्रजी म. की 'शुक्लजैनरामायण' तथा आचार्य तुलसी की 'अग्नि-परीक्षा' अति प्रसिद्ध है ।

जैनों में रामकथा की दो प्रमुख धाराएँ –

वैसे तो अवान्तर कथानकों की अपेक्षा जैन परम्परा में भी रामकथा के विविध रूप मिलते है । जैन परम्परा में भी लेखकों ने प्राय: अपनी अपनी दृष्टि से रामकथानक को प्रस्तुत किया है । फिर भी जैनों में रामकथा की दो धाराए लगभग प्राय ईसा की ९वीं शताब्दी से देखी जाती है – १. विमलसूरि की रामकथा धारा और २. गुणभद्र की रामकथा धारा । सम्प्रदायों की अपेक्षा–अचेल यापनीय एवं श्वेताम्बर विमलसूरि की रामकथा की धारा का अनुसरण करते रहे, जबकि दिगम्बर धारा में भी मात्र कुछ आचार्यों ने ही गुणभद्र की धारा का अनुसरण किया । श्वेताम्बर परम्परा में संघदासगणि एवं यापनीयो में रविशेष, स्वयम्भू एवं हरिषेण भी मुख्यत: विमलसूरि के 'पउमचरिय' का ही अनुसरण करते हैं, फिर भी संघदासगणि के कथानकों में कहीं कहीं विमलसूरि से मतभेद भी देखा जाता है । रामकथा सम्बन्धी प्राकृत ग्रन्थों में शीलाङ्क चउपन्नमहापुरिसचरियं में, हरिभद्र धूर्ताव्याख्यान में और भद्रेश्वर कहावली में, संस्कृत भाषा में रविषेण पद्मपुराण में, दिगम्बर अमितगति धर्मपरीक्षा में, हेमचन्द्र योगशास्त्र की स्वोपज्ञवृत्ति में तथा त्रिषष्टि-शलाकापुरूषचरित्र में, धनेश्वर शत्रुञ्जयमाहात्म्य में, देवविजयगणि 'रामचरित' (अप्रकाशित) और मेघविजयगणि लघुत्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र (अप्रकाशित) में प्राय: विमलसूरि का अनुसरण करते है । अपभ्रंश में स्वयम्भू 'पउमचरिउ' में भी विमलसूरि का ही अनुसरण करते है । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि रविषेण का 'पद्मपुराण' (संस्कृत) और स्वयम्भू का पउमचरिउ (अपभ्रंश) चाहे भाषा की अपेक्षा भिन्नता रखते हो, किन्तु ये दोनों ही विमलसूरि के पउमचरियं का संस्कृत या अपभ्रंश रूपान्तरण ही लगते है ।

गुणभद्र के उत्तरपुराण की रामकथा का अनुसरण प्रायः अल्प ही हुआ है। मात्र कृष्ण के संस्कृत के पुण्यचन्द्रोदयपुराण में तथा अपभ्रंश के पुष्पदन्त के महापुराण में इसका अनुसरण देखा जाता है।

विमलसूरि की रामकथा का वैशिष्ट्य –

विमलसूरि ने अपनी रामकथा में कुछ स्थितियों में वाल्मीकि का अनुसरण किया हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि उन्होंने जैन परम्परा में पूर्व से प्रचलित रामकथा धारा के साथ समन्वय करते हुए हिन्दू धारा की रामकथा के युक्ति-युक्त करण का प्रयास अधिक किया है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि विमलसूरि के समक्ष वाल्मीकि रामायण के साथ-साथ समवायाङ्ग का वह मूलपाठ भी रहा होगा जिसमें लक्ष्मण (नारायण) की माता को केकई बताया गया था। लेखक के सामने मूल प्रश्न यह था कि आगम की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखते हुए, वाल्मीकि के साथ किस प्रकार समन्वय किया जाये। यहाँ उसने एक अनोखी सूझ से काम लिया, वह लिखता है कि लक्ष्मण की माता का पितृगृह का नाम तो कैकेयी था, किन्तु विवाह के पश्चात् दशरथ ने उसका नाम परिवर्तन कर उसे 'सुमित्रा' नाम दिया। पउमचरियं में भरत की माता को भी 'केकई' कहा गया है। वाल्मीकि रामायण से भिन्न इस ग्रन्थ की रचना का मुख्य उद्देश्य काव्यानन्द की अनुभूति न होकर, कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रेणिकचिन्ता नामक दूसरे उद्देशक में इसका उद्देश्य रामकथा में आई असंगतियों तथा कपोल-कल्पनाओं का निराकरण बताया गया है। यह बात सुस्पष्ट है कि यह रामकथा का उपदेशात्मक जैन संस्करण है और इसलिये इसमें यथासम्भव हिंसा, घृणा, व्यभिचार आदि दुष्प्रवृत्तियों को न उभार कर सद्प्रवृत्तियों को ही उभारा गया है। इसमें वर्ण-व्यवस्था पर भी बल नहीं दिया गया है। यहाँ शम्बूक-वध का कारण शूद्र की तपस्या करना नहीं है। चन्द्रहास खड्ग की सिद्धि के लिये बांसो के झुरमुट में साधनारत शम्बूक का लक्ष्मण के द्वारा अनजान में ही मारा जाना है। लक्ष्मण उस पूजित खड्ग को उठाते हैं और परीक्षा हेतु बांसों के झुरमुट पर चला देते हैं, जिससे शम्बूक मारा जाता है। इस प्रकार जहाँ वाल्मीकि रामायण में शम्बूक वध की कथा

वर्ण-विद्वेष का खुला उदाहरण है, वहाँ पउमचरियं का शम्बूक वध अनजान में हुई एक घटना मात्र है । पुनः कवि ने राम के चरित्र को उदात्त बनाये रखने हेतु शम्बूक और रावण का वध राम के द्वारा न करवाकर लक्ष्मण के द्वारा करवाया है । बालि के प्रकरण को भी दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया गया है । बालि सुग्रीव को राज्य देकर संन्यास ले लेते है । दूसरा कोई विद्याधर सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य एवं अन्तःपुर पर कब्जा कर लेता है । सुग्रीव राम की सहायता की अपेक्षा करता है और राम उसकी सहायता कर उस नकली सुग्रीव का वध करते है । यहाँ भी सुग्रीव के कथानक में से भ्रातृ-पत्नी से विवाह की घटना को हटाकर उसके चरित्र को उदात्त बनाया गया है । इसी प्रकार कैकेयी भरत हेतु राज्य की मांग राम के प्रति विद्वेष के कारण नहीं, अपितु भरत को वैराग्य लेने से रोकने के लिये करती है । राम भी पिता की आज्ञा से नहीं अपितु स्वेच्छा से ही वन को चल देते हैं ताकि वे भरत को राज्य पाने में बाधक न रहे । इसी प्रकार विमलसूरि के पउमचरियं में कैकेयी के व्यक्तित्व को भी ऊँचा उठाया गया है । वह न तो राम के वनवास की मांग करती है और न उनके स्थान पर भरत के राज्यारोहण की । वह अन्त में संन्यास ग्रहण कर मोक्षगामी बनती है । न केवल यही, अपितु सीताहरण के प्रकरण में भी मृगचर्म हेतु स्वर्णमृग मारने के सीता के आग्रह की घटना को भी स्थान न देकर राम एवं सीता के चरित्र को निर्दोष और अहिंसामय बनाया गया है । रावण के चरित्र को उदात्त बनाने हेतु यह बताया गया है कि उसने किसी मुनि के समक्ष यह प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मैं किसी परस्त्री का, उसकी स्वीकृति के बिना शील भङ्ग नहीं करूँगा । इसलिये वह सीता को समझाकर सहमत करने का प्रयत्न करता रहता है, बलप्रयोग नहीं करता है । पउमचरियंमें मांस-भक्षण के दोष दिखाकर सामिष भोजन से जन-मानस को विरत करना भी जैनधर्म की अहिंसा की मान्यता के प्रसार का ही एक प्रयत्न है । ग्रन्थ में वानरों एवं राक्षसों को विद्याधरवंश के मानव बताया गया है, साथही यह भी सिद्ध किया गया है कि वे कला-कौशल और तकनीक में साधारण मनुष्यों से बहुत बढ़े-चढ़े थे । वे पादविहारी न होकर विमानों में विचरण करते थे । इस प्रकार इस ग्रन्थ में विमलसूरि ने अपने युग में प्रचलित रामकथा को अधिक युक्तिसंगत

और धार्मिक बनाने का प्रयास किया है ।

विमलसूरिकी रामकथासे अन्य जैनाचार्यों का वैभिन्न्य एवं समरूपता :

विमलसूरि के पउमचरियं के पश्चात् जैन रामकथा का एक रूप संघदास गणी (छठ्ठी शताब्दी) की वसुदेवहिण्डी में मिलता है । वसुदेवहिण्डी की रामकथा कुछ कथा-प्रसंगो के सन्दर्भ में पउमचरियं की रामकथा के भिन्न है और वाल्मीकि रामायण के निकट है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें सीता को रावण और मन्दोदरी की पुत्री बताया गया है, जिसे एक पेटी में बन्द कर जनक के उद्यान में गड़वा दिया गया था, जहाँ से हल चलाते समय जनक को उसकी प्राप्ति हुई थी । इस प्रकार यहाँ सीता की कथा को तर्कसंगत बनाते हुए भी उसका साम्य भूमि से उत्पन्न होने की धारणा के साथ जोड़ा गया है । इस प्रकार हम देखते है कि संघदासगणी ने रामकथा को कुछ भिन्न रूप से प्रस्तुत किया है । जबकि अधिकांश श्वेताम्बर लेखको ने विमलसूरि का ही अनुसरण किया है । मात्र यही नहीं, यापनीय परम्परा में पद्मपुराण के रचियता रविसेन (७वीं शताब्दी) और अपभ्रंश पउमचरियं के रचयिता यापनीय स्वयम्भू (७वीं शती) ने भी विमलसूरि का ही पूरी तरह अनुकरण किया है । पद्मपुराण तो पउमचरियं का ही विकसित संस्कृत रूपान्तरण मात्र है । यद्यपि उन्होंने उसे अचेल परम्परा के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है ।

आठवीं शताब्दी में हरिभद्र ने अपने धूर्ताख्यान में और नवीं शताब्दी में शीलाङ्काचार्य ने अपने ग्रन्थ 'चउपन्नमहापुरिसचरियं' में अति संक्षेप में रामकथा को प्रस्तुत किया है । भद्रेश्वर (११वीं शताब्दी) की कहावली में भी रामकथा का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध हैं । तीनों ही ग्रन्थकार कथा विवेचन में विमलसूरि की परम्परा का पालन करते हैं । इन तीनों के द्वारा प्रस्तुत रामकथा विमलसूरि से किस अर्थ में भिन्न है यह बता पाना इनके संक्षिप्त रूप के कारण कठिन है । यद्यपि भद्रेश्वरसूरि ने सीता के द्वारा सपत्नियों के आग्रह पर रावण के पैर का चित्र बनाने के उल्लेख किया । ये तीनों ही रचनाएँ प्राकृत भाषा में है । १२वीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ योगशास्त्र की स्वोपज्ञवृत्ति में तथा त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र में संस्कृत भाषा

में रामकथा को प्रस्तुत किया है । त्रिषष्टिशलाकापुरूषचरित्र में वर्णित रामकथा का स्वतन्त्र रूप से भी प्रकाशन हो चुका है । हेमचन्द्र सामान्यतया तो विमलसूरि की रामकथाका ही अनुसरण करतें हैं, किन्तु उन्होंने सीता का वनवास का कारण, सीता के द्वारा रावण का चित्र बनाना बताया है । यद्यपि उन्होंने इस प्रसंग के सिवा शेष सारे कथानक में पउमचरियं का ही अनुसरण किया है, फिर भी सौतियाडाह के कारण राम की अन्य पत्नियों ने सीता से रावण का चित्र बनवाकर, उसके सम्बन्ध में लोकापवाद प्रसारित किया, ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत कर दिया है । इस प्रसंग में हेमचन्द्र, भद्रेश्वरसूरि की कहावली का अनुसरण करते है और इस प्रसंग में धोबी के लोकापवाद को छोड देते है । चौदहवीं शताब्दी में धनेश्वर ने शत्रुञ्जयमाहात्म्य में भी रामकथा का विवरण दिया है । यद्यपि इन ग्रन्थों की अनुपलब्धता के कारण इनका विमलसूरि से कितना साम्य और वैषम्य है, यह बता पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है ।

पउमचरियं की भाषा एवं छन्द योजना :

सामान्यतया 'पउमचरियं' प्राकृत भाषा में रचित काव्य ग्रन्थ है, फिर भी इसकी प्राकृत मागधी,अर्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची और महाराष्ट्री प्राकृतों में कौन सी प्राकृत है, यह एक विचारणीय प्रश्न है । यह तो स्पष्ट है कि इसका वर्तमान संस्करण मागधी, अर्धमागधी और शौरसेनी प्राकृत की अपेक्षा महाराष्ट्री प्राकृत से अधिक नैकट्य रखता है, फिर भी इसे परवर्ती महाराष्ट्री प्राकृत से अलग रखना होगा । इस सम्बन्ध में प्रो. व्ही.एम.कुलकर्णी ने पउमचरियं की अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में अतिविस्तार से एवं प्रमाणो सहित चर्चा की है । उसका सार इतना ही है कि पउमचरियं की भाषा परवर्ती महाराष्ट्री प्राकृत न होकर प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है । वह सामान्य महाराष्ट्री प्राकृत का अनुसरण न करके जैन महाराष्ट्री प्राकृत का अनुसरण करती है, अतः उसका नैकट्य आगमिक अर्धमागधी से भी देखा जाता है । वे लिखते है कि ''Paumachariya, which represents an archaic form of jain maharastri'' पउमचरियं की भाषा की प्राचीनता इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि उसमें प्रायः गाथा (आर्या) छन्द की प्रमुखता है, जो एक प्राचीन और

सरलतम छन्द योजना है । गाथा या आर्या छन्द की प्रमुखता होते हुए भी पउमचरियं में स्कन्धक, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि अनेक छन्दों के प्रयोग भी मिलते है, फिर भी ये गाथा/आर्या छन्द की अपेक्षा अति अल्प मात्रा में प्रयुक्त हुए है । मेरी दृष्टि में इसकी भाषा और छन्द योजना का नैकट्य आगमिक व्याख्या साहित्य में निर्युक्ति साहित्य से अधिक है । इसकी भाषा और छन्द योजना से यह सिद्ध होता है कि इसका रचनाकाल दूसरी-तीसरी शती से परवर्ती नहीं है ।

पउमचरियं का रचनाकाल -

पउमचरियं में विमलसूरि ने इसके रचनाकाल का भी स्पष्ट निर्देश किया है -

पंचेव य वाससया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता ।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥

अर्थात् दुसमा नामक आरे के पाँच सौ तीस वर्ष और वीर का निर्वाण होने पर यह चरित्र लिखा गया । यदि हम लेखक के इस कथन को प्रामाणिक मानें तो इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् ६० के लगभग मानना होगी । महावीर का निर्वाण दुसमा नामक आरे के प्रारम्भ होने से लगभग ३ वर्ष और ९ माह पूर्व हो चुका था अतः इसमें चार वर्ष और जोड़ना होगे । मतान्तर से महावीर का निर्वाण विक्रम संवत् के ४१० वर्ष पूर्व भी माना जाता है, इस सम्बन्ध में मैंने अपने लेख ''Date of Mahavira's Nirvana'' में विस्तार से चर्चा की है । अतः उस दृष्टि से पउमचरियं की रचना विक्रम संवत् १२४ अर्थात् विक्रम संवत् की दूसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुई होगी। मेरी दृष्टि में पउमचरियं का यही रचनाकाल युक्ति-संगत सिद्ध होता है । क्योंकि ऐसा मानने पर लेखक के स्वयं के कथन से संगति होने के साथ-साथ उसे परवर्ती काल का मानने के सम्बन्ध में जो तर्क दिये गये है वे भी निरस्त हो जाते है । हरमन जेकोबी, स्वयं इसकी पूर्व तिथि २ री या ३ री शती मानते है, उनके मत से यह मत अधिक दूर भी नहीं है । दूसरे विक्रम की द्वितीय शताब्दी पूर्व ही शकों का आगमन हो चुका था अतः

इसमें प्रयुक्त लग्नों के ग्रीक नाम तथा 'दीनार', यवन, शक आदि शब्दों की उपलब्धि में भी कोई बाधा नही रहती है । यवन शब्द ग्रीकों अर्थात् सिकन्दर आदि का सूचक है जो ईसा पूर्व भारत में आ चुके थे । शकों का आगमन भी विक्रम संवत् के पूर्व हो चुका था, कालकाचार्य द्वारा शकों के भारत लाने का उल्लेख विक्रम पूर्व का है । दीनार शब्द भी शकों के आगमन के साथ ही आ गया होगा । साथ ही नाईल कुल या शाखा भी इस काल में अस्तित्व में आ चुकी थी । इसे मैंने पउमचरियं की परम्परा में सिद्ध किया है । अतः पउमचरियं को विक्रम की द्वितीय शती के पूर्वार्ध में रचित मानने में कोई बाधा नहीं रहती है ।

विमलसूरि और उनके पउमचरिय का सम्प्रदाय -

यहाँ क्या विमलसूरि व पउमचरियं यापनीय है ?

इस प्रश्न का उत्तर भी अपेक्षित है । विमलसूरि और उनके ग्रन्थ पउमचरियं के सम्प्रदाय सम्बन्धी प्रश्न को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है । जहाँ श्वेताम्बर[१] और विदेशी विद्वान्[२] पउमचरियं में उपलब्ध अन्तः साक्ष्यों के आधार पर उसे श्वेताम्बर परम्परा का बताते हैं, वहीं पउमचरियं के श्वेताम्बर परम्परा के विरोध में जानेवाले कुछ तथ्यों को उभार कर कुछ दिगम्बर विद्वान उसे दिगम्बर या यापनीय सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं ।[३] वास्तविकता यह है कि विमलसूरि के पउमचरियं में सम्प्रदायगत मान्यताओं की दृष्टि से यद्यपि कुछ तथ्य दिगम्बर परम्परा के पक्ष में जाते हैं, किन्तु अधिकांश तथ्य श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में ही जाते हैं । जहाँ हमें सर्वप्रथम इन तथ्यों की समीक्षा कर लेनी होगी । प्रो. वी. एम. कुलकर्णी ने जिन तथ्यों का संकेत प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी से प्रकाशित 'पउमचरियं' की भूमिका में किया है, उन्हीं के आधार पर यहाँ हम यह चर्चा प्रस्तुत करने जा रहे हैं ।[४]

---

१. पउमचरियं भाग-१, इण्ट्रोडक्सन पेज १८, फुटनोट नं. २ ।

२. वही,

३. देखें, पद्मपुराण (रविषेण), भूमिका, डॉ. पन्नालाल जैन, पृ. २२-२३

४. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन (वी.एम. कुलकर्णी), पेज १८-२२ ।

पउमचरिय की दिगम्बर परम्परा के निकटता सम्बन्धी कुछ तर्क और उनके उत्तर :

(१) कुछ दिगम्बर विद्वानों का कथन है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सामान्यतया किसी ग्रन्थ का प्रारम्भ- 'जम्बू स्वामी के पूछने पर सुधर्मा स्वामी ने कहा', - इस प्रकार से होता है, आगमों के साथ-साथ कथा ग्रन्थों में यह पद्धति मिलती है, इसका उदाहरण संघदासगणि की वसुदेव हिण्डी है। किन्तु वसुदेवहिण्डी में जम्बू ने प्रभव को कहा- ऐसा भी उल्लेख हैं।[५] जबकि दिगम्बर परम्परा के कथा ग्रन्थों में सामान्यतया श्रेणिक के पूछने पर गौतम गणधर ने कहा- ऐसी पद्धति उपलब्ध होती है। जहाँ तक पउमचरियं का प्रश्न है उसमें निश्चित ही श्रेणिक के पूछने पर गौतम ने रामकथा कही ऐसी ही पद्धति उपलब्ध होती है।[६] किन्तु मेरी दृष्टि में इस तथ्य को पउमचरियं के दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने का आधार नहीं माना जा सकता, क्योंकि पउमचरियं में स्त्री मुक्ति आदि ऐसे अनेक ठोस तथ्य हैं, जो श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में ही जाते हैं। यह सम्भव है कि संघभेद के पूर्व उत्तर भारत की निर्ग्रन्थ परम्परा में दोनों ही प्रकार की पद्धतियाँ समान रूप से प्रचलित रही हो और बाद में एक पद्धति का अनुसरण श्वेताम्बर आचार्यो ने किया हो और दूसरी का दिगम्बर या यापनीय आचार्यों ने किया हो। यह तथ्य विमलसूरि की परम्परा के निर्धारण में बहुत अधिक सहायक इसीलिए भी नहीं होता है कि प्राचीन काल में, श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में ग्रन्थ प्रारम्भ करने की अनेक शैलियाँ प्रचलित रही हैं। दिगम्बर परम्परा में विशेष रूप से यापनीयों में जम्बू और प्रभव से भी कथा परम्परा के चलने का उल्लेख तो स्वयं पद्मचरितं में ही मिलता है। वही क्रम श्वेताम्बर ग्रन्थ वसुदेवहिण्डी में भी है।[७] श्वेताम्बर परम्परा में भी कुछ ऐसे भी आगम ग्रन्थ हैं, जिनमें

५. ति तस्सेव पभवो कहेयव्वो, तप्पभवस्य य पभवस्य त्ति। वसुदेवहिण्डी (संघदासगणि), गुजरात साहित्य अकादमी, गाँधीनगर पृ. २१

६. तह इन्दभूइकहियं, सेणियरण्णस्स नीसेसं। - पउमचरियं १, ३३

७. वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरं। इन्द्रभूति परिप्राप्तः सुधर्म धारिणीभवम्॥
प्रभव क्रमतः कीर्ति ततोनुत्तरवाग्मिनं। लिखितं तस्य सप्राप्य सवेयेत्नोयमुद्गतः॥
— पद्मचरित १/४१-४२ पर्व १२३/१६६

(नोंध : उद्धरण-पाठ काफी अशुद्ध है —शी.)

किसी श्राविका के पूछने पर श्रावक ने कहा– इससे ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है । 'देविन्दत्थव' नामक प्रकीर्णक में श्रावक-श्राविका के संवाद के रूप में ही उस ग्रन्थ का समस्त विवरण प्रस्तुत किया गया है ।[८] आचाराङ्ग में शिष्य की जिज्ञासा समाधान हेतु गुरु के कथन से ही ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है ।[९] उसमें जम्बू और सुधर्मा से संवाद का कोई संकेत भी नहीं है । इससे यही फलित होता है कि प्राचीनकाल में ग्रन्थ का प्रारम्भ करने की कोई एक निश्चित पद्धति नहीं थी । श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवयाङ्ग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोगद्वार, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प आदि अनेक ग्रन्थों में भी जम्बू और सुधर्मा के संवाद वाली पद्धति नहीं पायी जाती है । पद्धतियों कि एकरूपता और विशेष सम्प्रदाय द्वारा विशेष पद्धति का अनुसरण-यह एक परवर्ती घटना है । जबकि पउमचरियं अपेक्षाकृत एक प्राचीन रचना है ।

(२) दिगम्बर विद्वानों ने पउमचरियं में महावीर के विवाह के अनुल्लेख (पउमचरियं २/२८-२९ एवं ३/५७-५८) के आधार पर उसे अपनी परम्परा के निकट बताने का प्रयास किया है । किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्रथम तो पउमचरियं में महावीर का जीवन-प्रसंग अति संक्षिप्त रूप से वर्णित है अतः महावीर के विवाह का उल्लेख न होने से उसे दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता है । स्वयं श्वेताम्बर परम्परा के कई प्राचीन ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं है । पं. दलसुखभाई मालवणिया ने स्थानाङ्ग एवं समवायाङ्ग के टिप्पण में लिखा है[१०] कि भगवतीसूत्र के विवरण में महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं मिलता है । विवाह का अनुल्लेख एक अभावात्मक प्रमाण है, जो अकेला निर्णायक नहीं माना जा सकता, जब तक कि अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध नहीं हो जावे कि पउमचरियं दिगम्बर या यापनीय ग्रन्थ है ।

८. देविंदत्थओ (देवेन्द्रस्तव, सम्पादक - प्रो.सागरमल जैन, आगम-अहिंसा-समता-प्राकृत संस्थान उदयपुर) गाथा क्रमांक - ३, ७, ११, १३, १४ ।

९. सुयं में आउसं । तेणं भगवया एवमक्खायं । - आचाराङ्ग (सं. मधुकर मुनि), १/१/१/१

१०. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन, पृष्ठ १९ का फुटनोट क्र. १ ।

(३) पुनः पउमचरियं में महावीर के गर्भ-परिवर्तन का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु मेरी दृष्टि से इसका कारण भी उसमें महावीर की कथा को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करना है । पुनः यहाँ भी किसी अभावात्मक तथ्य के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न होगा, जो कि तार्किक दृष्टि से समुचित नहीं है ।

(४) पउमचरियं में पाँच स्थावरकायों[११] के उल्लेख के आधार पर भी उसे दिगम्बर परम्परा के निकट बताने का प्रयास किया गया है । किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि स्थावरों की संख्या तीन मानी गई है अथवा पाँच, इस आधार पर ग्रन्थ के श्वेताम्बर या दिगम्बर परम्परा का होने का निर्णय करना सम्भव नहीं है । क्योंकि दिगम्बर परम्परा में जहाँ कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय (१११) में तीन स्थावरों की चर्चा की हैं, वहीं अन्य आचार्यो ने पाँच की चर्चा की है । इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा के उत्तराध्ययन आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी, तीन स्थावरों की तथा पाँच स्थावरों की - दोनों मान्यताएँ उपलब्ध होती है । अतः ये तथ्य विमलसूरि और उनके ग्रन्थ की परम्परा के निर्णय का आधार नहीं बन सकते । इस तथ्य की विशेष चर्चा हमने तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के प्रसंग में की है, साथ ही एक स्वतन्त्र लेख भी श्रमण अप्रैल-जून ९३ में प्रकाशित किया है, पाठक इसे वहाँ देखें ।

(५) कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पउमचरियं में १४ कुलकरों की अवधारणा पायी जाती हैं ।[१२] दिगम्बर परम्परा द्वारा मान्य ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती में भी १४ कुलकरों की अवधारणा का समर्थन देखा जाता है[१३] अतः यह ग्रन्थ दिगम्बर परम्परा का होना चाहिए । किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अन्तिम कुलकर के रूप में ऋषभ का उल्लेख है । ऋषभ के पूर्व नाभिराय तक १४ कुलकरों की अवधारणा तो दोनों परम्पराओं में समान है । अतः यह अन्तर ग्रन्थ के सम्प्रदाय के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है । पुनः जो कुलकरों के नाम पउमचरियं

---

११. पउमचरियं, २/६५ एवं २/६३ ।

१२. पउमचरियं, ३/५५-५६

१३. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार गाथा-४२१ (जोवराज ग्रन्थमाला शोलापुर) ।

में दिये गये है उनका जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और तिलोयपण्णत्ति दोनों से ही कुछ अन्तर है ।

(६) पउमचरियं के १४वें अधिकार की गाथा ११५ में समाधिमरण को चार शिक्षाव्रतों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है,[१४] किन्तु श्वेताम्बर आगम उपासकदशा में समाधिमरण का उल्लेख शिक्षाव्रतों के रूप में नहीं हुआ है । जबकि दिगम्बर परम्परा के कुन्दकुन्द आदि कुछ आचार्य समाधिमरण को १२वें शिक्षाव्रत के रूप में अङ्गीकृत करते हैं ।[१५] अतः पउमचरियं दिगम्बर परम्परा से सम्बन्द्ध होना चाहिए । इस सन्दर्भ में मेरी मान्यता यह है कि गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों में एकरूपता का अभाव पाया जाता है ।[१६] दिगम्बर परम्परा में तत्त्वार्थ का अनुसरण करने वाले दिगम्बर आचार्य भी समाधिमरण को शिक्षाव्रतों में परिग्रहीत नहीं करते हैं । जबकि कुन्दकुन्द ने उसे शिक्षाव्रतों में परिग्रहीत किया है । जब दिगम्बर परम्परा ही

---

१४. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, यक्षस्कार २ ।

१५. पंच य अणुव्वयाइं तिण्णेव गुणव्वयाइं भणियाइं ।
सिक्खावयाणि एत्तो चत्तारि जिणोवइट्ठाणि ॥
थूलयरं पाणिवहं मूसावायं अदत्तदाणं च ।
परजुवईण निवित्ती संतोसदयं च पंचमयं ॥
दिसिविदिसाण य नियमो अणत्थदंडस्स वज्जणं चेव ।
उवभोगपरीमाणं तिण्णेव गुणव्वया एए ॥
सामाइयं च उववास-पोसहो अतिहिसंविभागो य ।
अंते समाहिमरणं सिक्खासुवयाइ चत्तारि ॥ – पउमचरियं १४/११२-११५

१६. पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य ।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभ परिमाणं ॥
दिसविदिसमाणपढमं अणत्थदण्डस्य वज्जणं विदियं ।
भोगोपभोगपरिमाण इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥
सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ – चारित्तपाहुड २२-२६
ज्ञातव्य है कि जटासिंह नन्दी ने भी वराडगचरित सर्ग २२ में विमलसूरि का अनुसरण किया है ।

इस प्रश्न पर एकमत नहीं है तो फिर इस आधार पर पउमचरियं की परम्परा का निर्धारण कैसे किया जा सकता है ? । साम्प्रदायिक मान्यताओं के स्थिरीकरण के पूर्व निर्ग्रन्थ परम्परा में विभिन्न धारणाओं की उपस्थिति एक सामान्य बात थी । अतः इस ग्रन्थ के सम्प्रदाय का निर्धारण करने में व्रतों के नाम एवं क्रम सम्बन्धी मतभेद सहायक नहीं हो सकते ।

(७) पउमचरियं में अनुदिक् का उल्लेख हुआ है ।[१७] श्वेताम्बर आगमों में अनुदिक् का उल्लेख नहीं है, जबकि दिगम्बर ग्रन्थ (यापनीय ग्रन्थ) षट्खण्डागम एवं तिलोयपण्णत्ती में इसका उल्लेख पाया जाता है ।[१८] किन्तु मेरी दृष्टि में प्रथम तो यह भी पउमचरियं के सम्प्रदाय निर्णय के लिए महत्त्वपूर्ण साक्ष्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अनुदिक् की अवधारणा से श्वेताम्बरों का भी कोई विरोध नहीं है । दूसरे जब अनुदिक् शब्द स्वयं आचाराङ्ग में उपलब्ध है[१९] तो फिर हमारे दिगम्बर विद्वान् यह कैसे कह देते हैं कि श्वेताम्बर परम्परा में अनुदिक् की अवधारणा नहीं है ?

(८) पउमचरियं में दीक्षा के अवसर पर ऋषभ द्वारा वस्त्रों के त्याग का उल्लेख मिलता है ।[२०] इसी प्रकार भरत द्वारा भी दीक्षा ग्रहण करते समय वस्त्रों के त्याग का उल्लेख है ।[२१] किन्तु यह दोनों सन्दर्भ भी पउमचरियं के दिगम्बर या यापनीय होने के प्रमाण नहीं कहे जा सकते । क्योंकि श्वेताम्बर मान्य ग्रन्थों में भी दीक्षा के अवसर पर वस्त्राभूषण त्याग का उल्लेख तो मिलता ही है ।[२२] यह भिन्न बात है कि श्वेताम्बर ग्रन्थों में उस वस्त्र त्याग

१७. देखिए जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन (लेखक- डा. सागरमल जैन) भाग-२, पृ. सं. २७४

१८. पउमचरियं, १०२/१४५

१९. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन, पृष्ठ १९, पद्मपुराण, भूमिका (पं. पन्नालाल), पृ. ३०

२०. जो इमाओ (दिसाओ) अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ अणुदिसाओ, सोऽहं । आचाराङ्ग १/१/१/१, शीलाङ्कटीका, पृ. १९ । (ज्ञातव्य है कि मूल पउमचरियं मे केवल 'अनुदिसाइ', शब्द है जो कि आचाराङ्ग में उसी रूप में है । उससे नौ अनुदिशाओं की कल्पना दिखाकर उसे श्वेताम्बर आगमों में अनुपस्थित कहना उचित नहीं है ।)

२१. देखिए, पउमचरियं ३/१३५-३६

२२. पउमचरियं, ८३/५

के बाद कहीं देवदूष्य का ग्रहण भी दिखाया जाता है ।[२३] ऋषभ, भरत, महावीर आदि अचेलकता तो स्वयं श्वेताम्बरों को भी मान्य है । अतः पं. परमानन्द शास्त्री का यह तर्क ग्रन्थ के दिगम्बरत्व का प्रमाण नहीं माना जा सकता है ।[२४]

(९) पं. परमानन्द शास्त्री के अनुसार पउमचरियं में नरकों कि संख्या का जो उल्लेख मिलता है वह आचार्य पूज्यपाद के सर्वार्थसिद्धिमान्य तत्त्वार्थ के पाठ के निकट है, जबकि श्वेताम्बर भाष्य-मान्य तत्त्वार्थ के मूलपाठ में यह उल्लेख नहीं है । किन्तु तत्त्वार्थभाष्य एवं अन्य श्वेताम्बर आगमों में इस प्रकार के उल्लेख उपलब्ध होने से इसे भी निर्णायक तथ्य नहीं माना जा सकता है । इसी प्रकार नदियों के विवरण का तथा भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के विभाग आदि तथ्यों को भी ग्रन्थ के दिगम्बरत्व के प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु ये सभी तथ्य श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी उल्लेखित है ।[२५] अतः ये तथ्य ग्रन्थ के दिगम्बरत्व या श्वेताम्बरत्व के निर्णायक नहीं कहे जा सकते । मूल परम्परा के एक होने से अनेक बातों में एकरूपता का होना तो स्वाभाविक ही है । पुनः षट्खण्डागम, तिलोयपण्णत्ती, तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि आदि दिगम्बर टीकायें पउमचरियं से परवर्ती है अतः उनमें विमलसूरि के पउमचरियं का अनुसरण देखा जाना आश्चर्यजनक नहीं है किन्तु इनके आधार पर पउमचरियं की परम्परा को निश्चित नहीं किया जा सकता है । पूर्ववर्ती ग्रन्थों के आधार पर पूर्ववर्ती ग्रन्थ की परम्परा को निश्चित नहीं की जा सकती है । पुनः पउमचरियं में तीर्थकर माता के १४ स्वप्न, तीर्थकर नामकर्मबन्ध के बीस कारण, चक्रवर्ती की रानियों को ६४००० संख्या, महावीर के द्वारा मेरुकम्पन, स्त्रीमुक्ति का स्पष्ट उल्लेख आदि अनेक ऐसे तथ्य है जो स्त्री मुक्ति निषेधक दिगम्बर परम्परा के विपक्ष में जाते हैं । विमलसूरि के सम्पूर्ण ग्रन्थ में दिगम्बर शब्द का अनुल्लेख और सियम्बर शब्द का एकाधिक बार उल्लेख होने से

---

२३. मुक्कं वासोजुयलं....... । - चउपन्नमहापुरिसचरियं, पृ. २७३

२४. एगं देवदूसमादाय...... पव्वइए । - कल्पसूत्र ११४

२५. पउमचरियं भाग-१ (इण्ट्रोडक्सन पेज १९, फुटनोट ५)

उसे किसी भी स्थिति में दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

क्या पउमचरियं श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ है ।

आयें अब इसी प्रश्न पर श्वेताम्बर विद्वानों के मन्तव्य पर भी विचार करें और देखें कि क्या वह श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ हो सकता है ?

पउमचरियं के श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं —

(१) विमलसूरि ने लिखा है कि 'जिन' के मुख्य से निर्गत अर्थरूप वचनों को गणधरों ने धारण करके उन्हें ग्रन्थरूप दिया-इस तथ्य को मुनि कल्याणविजय जी ने श्वेताम्बर परम्परा सम्मत बताया है । क्योंकि श्वे. परम्परा की निर्युक्ति में इसका उल्लेख मिलता है ।[२६]

(२) पउमचरियं (२/२६) में महावीर के द्वारा अँगूठे से मेरुपर्वत को कम्पित करने की घटना का भी उल्लेख हुआ है, यह अवधारणा भी श्वेताम्बर परम्परा में बहुत प्रचलित है ।

(३) पउमचरियं (२/३६-३७) में यह भी उल्लेख है कि महावीर केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भव्य जीवों को उपदेश देते हुए विपुलाचल पर्वत पर आये, जबकि दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर ने ६६ दिनों तक मौन रखकर विपुलाचल पर्वत पर अपना प्रथम उपदेश दिया । डा. हीरालाल जैन एवं डा. उपाध्ये ने भी इस कथन को श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में माना है ।[२७]

(४) पउमचरियं (२/३३) में महावीर का एक अतिशय यह माना गया है कि वे देवों के द्वारा निर्मित कमलों पर पैर रखते हुए यात्रा करते थे। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में प्रमाण माना है, किन्तु मेरी दृष्टि में यह कोई महत्त्वपूर्ण प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

---

२६. 'जिणवरमुहाओ अत्थो सो गणहेरहि धरिउं । आवश्यक निर्युक्ति १/१०

२७. देखे -- पद्मपुराण (आचार्य रविषेण), प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सम्पादकीय, पृ. ७

यापनीय आचार्य हरिषेण एवं स्वयम्भू आदि ने भी इस अतिशय का उल्लेख किया है ।

(५) पउमचरियं (२/८२) में तीर्थङ्कर नामकर्म प्रकृति के बन्ध के बीस कारण माने है । यह मान्यता आवश्यकनिर्युक्ति और ज्ञाताधर्मकथा के समान ही है । दिगम्बर एवं यापनीय दोनों ही परम्पराओं में इसके १६ ही कारण माने जाते है । अतः इस उल्लेख को श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में एक साक्ष्य कहा जा सकता है ।

(६) पउमचरियं में मरुदेवी और पद्मावती – इन तीर्थङ्कर माताओं के द्वारा १४ स्वप्न देखने का उल्लेख है ।[२८] यापनीय एवं दिगम्बर परम्परा १६ स्वप्न मानती है । इसी प्रकार इसे भी ग्रन्थ के श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के सम्बन्ध में प्रबल साक्ष्य माना जा सकता है । पं. नाथूराम जी प्रेमी ने यहाँ स्वप्नों की संख्या १५ बतायी है ।[२९] भवन और विमान को उन्होंने दो अलग-अलग स्वप्न माना है । किन्तु श्वेताम्बर परम्परा में ऐसे उल्लेख मिलते है कि जो तीर्थङ्कर नरक से आते है, उनकी माताएँ भवन और जो तीर्थङ्कर देवलोक से आते है उनकी माताएँ विमान देखती है । यह एक वैकल्पिक व्यवस्था है अतः संख्या चौदह ही होगी । (आवश्यक हरिभद्रीय वृत्ति पृ. १०८) । स्मरण रहे कि यापनीय रविषेण ने पउमचरियं के ध्वज के स्थान पर मीन-युगल को माना है । ज्ञातव्य है कि प्राकृत 'झय' के संस्कृत रूप 'ध्वज' तथा झष (मीन-युगल) दोनों सम्भव है । साथ ही सागर के बाद उन्होंने सिंहासन का उल्लेख किया है और विमान तथा भवन को अलग-अलग स्वप्न माना हैं यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि स्वप्न सम्बन्धी पउमचरियं की यह गाथा श्वेताम्बर मान्य 'नायाधम्मकहा' से बिल्कुल

---

२८. पउमचरियं, ३/६२, २१/१३ ।
(यहाँ मरुदेवी ओर पद्मावती के स्वप्नों में समानता है, मात्र मरुदेवी के सन्दर्भ में 'वरसिरिदाम' शब्द आया है, जबकि पद्मावती के स्वप्नों में 'अभिसेकदास' शब्द आया है – किन्तु दोनों का अर्थ लक्ष्मी ही है ।)

२९. जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी), पृ. ९९

समान है ।[३०] अतः यह अवधारणा भी ग्रन्थ के श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के सम्बन्ध में प्रबल साक्ष्य है ।

(७) पउमचरियं में भरत और सगर चक्रवर्ती की ६४ हजार रानियों का उल्लेख मिलता है[३१], जबकि दिगम्बर परम्परा में चक्रवर्तीयों की रानियों की संख्या ९६ हजार बतायी है ।[३२] अतः यह साक्ष्य भी दिगम्बर और यापनीय परम्परा के विरुद्ध है और मात्र श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में जाता है ।

(८) अजित और मुनिसुव्रत के वैराग्य के कारणों को तथा उनके संघस्थ साधुओं की संख्या को लेकर पउमचरियं और तिलोयपण्णत्ति में मत वैभिन्य है ।[३३] किन्तु ऐसा मतवैभिन्य एक ही परम्परा में भी देखा जाता है अतः इसे ग्रन्थ के श्वेताम्बर होने का सबल साक्ष्य नहीं कहा जा सकता है ।

(९) पउमचरियं और तिलोयपण्णत्ति में बलदेवों के नाम एवं क्रम को लेकर मतभेद देखा जाता है, जबकि पउमचरियं में दिये गये नाम एवं क्रम श्वेताम्बर परम्परा में यथावत् मिलते हैं ।[३४] अतः इसे भी ग्रन्थ के श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के पक्ष में एक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । यद्यपि यह स्मरण रखना होगा कि पउमचरियं में भी राम को बलदेव ही कहा गया है ।

(१०) पउमचरियं में १२ देवलोकों का उल्लेख है जो कि श्वेताम्बर परम्परा की मान्यतानुरूप है ।[३५] जबकि यापनीय रविषेण और दिगम्बर परम्परा के अन्य आचार्य देवलोकों की संख्या १६ मानते है अतः इसे भी ग्रन्थ के श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने का प्रमाण माना जा सकता है ।

---

३०. णायधम्मकहा (मधुकर मुनि) प्रथम श्रुतस्कथं, अध्याय ८, २६ ।

३१. पउमचरियं ४/५८, ५/९८

३२. पद्मपुराण (रविषेण), ४/६६, २४७ ।

३३. देखें पउमचरियं २१/२२, पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन पेज २२ फुटनोट- ३ । तुलनीय-तिलोयपण्णत्ती, ४/६०८

३४. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन पेज २१ ।

३५. पउमचरियं, ६५/३५-३६ और १०२/४२-५४

(११) पउमचरियं में सम्यक्दर्शन को परिभाषित करते हुए यह कहा गया है कि जो नव पदार्थों को जानता है वह सम्यग्दृष्टि है[३६] । पउमचरियं में कहीं भी ७ तत्त्वों का उल्लेख नहीं हुआ है । पं. फूलचन्दजी के अनुसार यह साक्ष्य ग्रन्थ के श्वेताम्बर होनें के पक्ष में जाता है[३७] । किन्तु मेरी दृष्टि में नव पदार्थों का उल्लेख दिगम्बर परम्परा में भी पाया जाता है अतः इसे ग्रन्थ के श्वेताम्बर होने का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य तो नहीं कहा जा सकता । दोनों ही परम्परा में प्राचीन काल में नव पदार्थ ही माने जाते थे, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र के पश्चात् दोनों में सात तत्त्वों की मान्यता भी प्रविष्ट हो गई । चूंकि श्वेताम्बर प्राचीन स्तर के आगमों का अनुसरण करते थे, अतः उनमें ९ तत्त्वों की मान्यता की प्रधानता बनी रही । जबकि दिगम्बर परम्परा में तत्त्वार्थ के अनुसरण के कारण सात तत्त्वों की प्रधानता स्थापित हो गई ।

(१२) पउमचरियं में उसके श्वेताम्बर होने के सन्दर्भ में जो सबसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध है वह यह कि उसमें कैकयी को मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है[३८] । इस प्रकार पउमचरियं स्त्री मुक्ति का समर्थक माना जा सकता है । यह तथ्य दिगम्बर परम्परा के विरोध में जाता है । किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यापनीय भी स्त्रीमुक्ति तो स्वीकार करते थे, अतः यह दृष्टि से यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं से सम्बद्ध या उनका पूर्वज माना जा सकता है ।

(१३) इसी प्रकार पउमचरियं में मुनि को आशीर्वाद के रूप में धर्मलाभ कहते हुए दिखाया गया है,[३९] जबकि दिगम्बर परम्परा में मुनि आशीर्वचन के रूप में धर्मवृद्धि कहता हैं । किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि धर्मलाभ कहने की परम्परा न केवल श्वेताम्बर है, अपितु यापनीय भी है । यापनीय मुनि भी श्वेताम्बर मुनियों के समान धर्मलाभ ही कहते

---

३६. पउमचरियं, १०२/१८१ ।

३७. अनेकान्त वर्ष ५, किरण १-२ तत्त्वार्थ सूत्र का अन्तः परीक्षण, पं. फूलचन्दजी पृ. ५१ ।

३८. सिद्धिपयं उत्तमं पत्ता-पउमचरियं ८६/१२ ।

३९. देखें, पउमचरियं इण्ट्रोडक्सन पेज २१ ।

थे ।[४०]

ग्रन्थ के श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के इन अन्तःसाक्ष्यों के परीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य मुख्य रूप से उसके श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के पक्ष में अधिक हैं । विशेष रूप से स्त्री-मुक्ति का उल्लेख यह सिद्ध कर देता है कि यह ग्रन्थ स्त्री-मुक्ति निषेधक दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध नहीं हो सकता है ।

(१४) विमलसूरि ने पउमचरियं के अन्त में अपने को नाइल (नागेन्द्र) वंशनन्दीकर आचार्य राहू का प्रशिष्य और आचार्य विजय का शिष्य बताया है ।[४१] साथ ही पउमचरियं का रचनाकाल वी.नि.सं. ५३० कहा है ।[४२] ये दोनों तथ्य भी विमलसूरि एवं उनके ग्रन्थ के सम्प्रदाय निर्धारण हेतु महत्त्वपूर्ण आधार माने जा सकते हैं । यह स्पष्ट है कि दिगम्बर परम्परा में नागेन्द्र कुल का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है, जबकि श्वेताम्बर मान्य कल्पसूत्र स्थविरावली में आर्यवज्र के प्रशिष्य एवं व्रजसेन के शिष्य आर्य नाग से नाइल या नागिल शाखा के निकलने का उल्लेख है ।[४३] श्वेताम्बर पट्टावलियों के अनुसार भी वज्रसेन के शिष्य आर्य नाग ने नाइल शाखा प्रारम्भ की थी । विमलसूरि इसी नागिल शाखा में हुए हैं । नन्दीसूत्र में आचार्य भूतदिन्न को भी नाइलकुलवंशनंदीकर कहा गया है ।[४४] यही बिरुद विमलसूरि ने अपने गुरुओं आर्य राहू एवं आर्य विजय को भी दिया है । अतः यह सुनिश्चित है कि विमलसूरि उत्तर भारत की निर्ग्रन्थ परम्परा से सम्बन्धित है और उनका यह 'नाइल कुल' श्वेताम्बरों में बारहवीं शताब्दी तक चलता रहा है । चाहे उन्हें आज के अर्थ में श्वेताम्बर न कहा जाये, किन्तु वे

---

४०. गोप्या यापनीया । गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं भणन्ति ।-षड्दर्शनसमुच्चय टीका ४/१ ।

४१. पउमचरियं, ११८/११७ ।

४२. वही, ११८/१०३ ।

४३. 'थेरेहिंतो णं अज्जवइरसेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया' -कल्पसूत्र २२१, पृ. ३०६

४४. नाइलकुल-वंसनंदिकरे.....भूयदिन्नमायरिए । - नन्दीसूत्र ४४-४५

श्वेताम्बरों के अग्रज अवश्य है, इसमें किसी प्रकार के मतभेद की सम्भावना नहीं है ।

पउमचरियं जैनों के सम्प्रदाय-भेद से पूर्व का हैं -

पउमचरियं के सम्प्रदाय का निर्धारण करने हेतु यहाँ दो समस्याएँ विचारणीय हैं – प्रथम तो यह कि यदि पउमचरियं का रचनाकाल वीर नि.सं. ५३० है, जिसे अनेक आधारों पर अयथार्थ भी नहीं कहा जा सकता है, तो वे उत्तरभारत के सम्प्रदाय-विभाजन के पूर्व के आचार्य सिद्ध होगे । यदि हम महावीर का निर्वाण ई.पू. ४६७ मानते हैं तो इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई. सन् ६४ और वि.सं. १२३ आता है । दूसरे शब्दों में पउमचरियं विक्रम की द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्ध की रचना है । किन्तु विचारणीय यह है कि क्या वीर नि.सं. ५३० में नागिलकुल अस्तित्व में आ चुका था ? यदि हम कल्पसूत्र पट्टावली की दृष्टि से विचार करें तो आर्य वज्र के शिष्य आर्य वज्रसेन और उनके शिष्य आर्य नाग महावीर की पाट परम्परा के क्रमशः १३वें, १४वें एवं १५वें स्थान पर आते हैं[४५] । यदि आचार्यों का सामान्य काल ३० वर्ष मानें तो आर्य वज्रसेन और आर्य नाग का काल वीर नि. के ४२० वर्ष पश्चात् आता है, इस दृष्टि से वीर नि. के ५३०वें वर्ष में नाइलकुल का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है । यद्यपि पट्टावलिओं में वज्रस्वामी के समय का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु निह्नवों के सम्बन्ध में जो कथायें हैं, उसमें आर्यरक्षित को आर्य भद्र और वज्र स्वामी का समकालीन बताया गया है और इस दृष्टि से वज्रस्वामी का समय वीर नि. ५८३ मान लिया गया है, किन्तु यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है । इस सम्बन्ध में विशेष उहापोह करके कल्याणविजयजी ने आर्य वज्रसेन की दीक्षा वीर नि.सं. ४८६ में निश्चित की है । यदि इसे हम सही मान ले तो वीर नि.सं. ५३० में नाइल कुल का अस्तित्व मानने में कोई बाधा नहीं आती है । पुनः यदि कोई आचार्य दीर्घजीवी हो तो अपनी शिष्य परम्परा में सामान्यतया वह चार-पाँच पीढ़ियाँ तो देख ही लेता है । वज्रसेन के शिष्य आर्य नाग, जिनके नाम पर नागेन्द्र कुल ही स्थापना हुई, अपने दादा गुरु आर्य वज्र के जीवनकाल में जीवित

४५. पट्टावली परागसंग्रह (कल्याणविजयजी), पृ.२७ एवं १३८-१३९

हो सकते हैं । पुनः आर्य वज्र का स्वर्गवास वी. नि.सं. ५८४ में हुआ ऐसा अन्य स्रोतों से प्रमाणित नहीं होता है । मेरी दृष्टि में तो यह भ्रान्त अवधारणा है । यह भ्रान्ति इसलिये प्रचलित हो गई कि नन्दीसूत्र स्थविरावली में आर्य वज्र के पश्चात् सीधे आर्यरक्षित का उल्लेख हुआ । इसी आधार पर उन्हें आर्य वज्र का सीधा शिष्य मानकर वज्रसेन को उनका गुरु भ्राता मान लिया गया और आर्यरक्षित के काल के आधार पर उनके काल का निर्धारण कर लिया गया । किन्तु नन्दीसूत्र में आचार्यों के क्रम में बीच-बीच में अन्तराल रहे हैं । अतः आचार्य विमलसूरि का काल वीर निर्वाण सं. ५३० अर्थात् विक्रम की दूसरी शताब्दी का पूर्वार्ध मानने में कोई बाधा नहीं जाती है । यदि हम पउमचरियं के रचनाकाल वीर नि.सं. ५३० को स्वीकार करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि उस काल तक उत्तरभारत के निर्ग्रन्थ संघ में विभिन्न कुल शाखाओं की उपस्थिति और उनमें कुछ मान्यताभेद या वाचनाभेद तो था फिर भी स्पष्ट संघभेद नहीं हुआ था । दोनों परम्पराएँ इस संघभेद को वीर निर्वाण सं. ६०६ या ६०९ में मानती है । अतः स्पष्ट है कि अपने काल की दृष्टि से भी विमलसूरि संघभेद के पूर्व के आचार्य है और इसलिए उन्हें किसी संप्रदायविशेष से जोड़ना सम्भव नहीं है । हम सिर्फ यही कह सकते हैं वे उत्तर भारत के उस श्रमण संघ में हुए हैं, जिसमें से श्वेताम्बर और यापनीय दोनों धाराएँ निकली हैं । अतः वे श्वेताम्बर और यापनीय दोनों के पूर्वज है और दोनों ने उनका अनुसरण किया है । यद्यपि दक्षिण भारत की निर्ग्रन्थ परम्परा के प्रभाव से यापनीयों ने उनकी कुछ मान्यताओं को अपने अनुसार संशोधित कर लिया था, किन्तु स्त्रीमुक्ति आदि तो उन्हें भी मान्य रही है ।

पउमचरियं में स्त्रीमुक्ति आदि की जो अवधारणा है वह भी यही सिद्ध करती है कि वे इन दोनों परम्पराओं के पूर्वज हैं, क्योंकि दोनों ही परम्परायें स्त्रीमुक्ति को स्वीकार करती है । यदि कल्पसूत्र स्थविरावली के सभी गण, कुल, शाखायें श्वेताम्बर द्वारा मान्य है, तो विमलसूरि को श्वेताम्बरों का पूर्वज मानने में कोई बाधा नहीं है । पुनः यह भी सत्य है कि सभी श्वेताम्बर आचार्य उन्हें अपनी परम्परा का मानते रहे हैं । जबकि यापनीय

रविषेण और स्वयम्भू ने उनके ग्रन्थों का अनुसरण करते हुए भी उनके नाम का स्मरण तक नहीं किया है, इससे यही सिद्ध होता है कि वे उन्हें अपने से भिन्न परम्परा का मानते थे । किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि वे उसी युग में हुए हैं जब श्वेताम्बर, यापनीय और दिगम्बर का स्पष्ट भेद सामने नहीं आया था । यद्यपि कुछ विद्वान उनके ग्रन्थ में मुनि के लिए 'सियंबर' शब्द के एकाधिक प्रयोग देखकर उनकी श्वेताम्बर परम्परा से सम्बद्ध करना चाहेंगे, किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ सावधानियों की अपेक्षा है । विमलसूरि के इन दो-चार प्रयोगों को छोडकर हमें प्राचीन स्तर के साहित्य में कहीं भी श्वेताम्बर या दिगम्बर शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है । विद्वानों ने भी विमलसूरि के पउमचरियं में उपलब्ध श्वेताम्बर (सियंबर) शब्द के प्रयोग को सम्प्रदाय सूचन न मानकर उस युग के सर्वत्र मुनि का सूचक माना है । हो सकता है कि परवर्ती श्वेताम्बर आचार्यों या प्रतिलिपि कर्ताओं ने यह शब्द बदला हो, यद्यपि ऐसी सम्भावना कम है । क्योंकि सीता साध्वी के लिये भी सियंबर शब्द का प्रयोग उन्होंने स्वयं किया होगा । मुझे ऐसा लगता है विमलसूरि के ईसा की प्रथम-द्वितीय शती के अंकन भी इसकी पुष्टि करते हैं । जिस प्रकार सर्वत्र साध्वी सीता को विमलसूरि ने सियंबरा कहा उसी प्रकार सवस्त्र मुनि को भी सियंबर कहा होगा । उनका यह प्रयोग निर्ग्रन्थ मुनियों द्वारा वस्त्र रखने की प्रवृत्ति का सूचक है, न कि श्वेताम्बर दिगम्बर संघभेद का । विमलसूरि निश्चित ही श्वेताम्बर और यापनीय - दोनों के पूर्वज है । श्वेताम्बर उन्हें अपने सम्प्रदाय का केवल इसीलिये मानते हैं कि वे उनकी पूर्व परम्परा से जुड़े हुए हैं ।

श्रीमती कुसुम पटोरिया ने महावीर जयन्ती स्मारिका जयपुर वर्ष १९७७ ई. पृष्ठ २५७ पर इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि विमलसूरि और पउमचरियं यापनीय नहीं है । वे लिखती हैं कि 'निश्चित विमलसूरि एक श्वेताम्बराचार्य है । उनका नाइलवंश, स्वयम्भू द्वारा उनका स्मरण न किया जाना तथा उनके (ग्रन्थ में) श्वेताम्बर साधु का आदरपूर्वक उल्लेख - उनके यापनीय न होने के प्रत्यक्ष प्रमाण है ।'

विमलसूरि और उनके ग्रन्थ पउमचरियं को यापनीय मानने में सबसे

बड़ी बाधा यह भी है कि उनकी कृति महाराष्ट्री प्राकृत को अपने ग्रन्थ की भाषा नहीं बनाया है। यापनीयों ने सदैव ही अर्धमागधी से प्रभावित शौरसेनी प्राकृत को ही अपनी भाषा माना है।

अतः आदरणीय पं. नाथुरामजी प्रेमी ने उसके यापनीय होने के सम्बन्ध में जो सम्भावना प्रकट की है, वह समुचित प्रतीत नहीं होती है। यह ठीक है कि उनकी मान्यताओं की श्वेताम्बरों एवं यापनीयों दोनों से समानता है, किन्तु इसका कारण उनका इन दोनों परम्पराओं का पूर्वज होना है – श्वेताम्बर या यापनीय होना नहीं। कालकी दृष्टि से भी वे इन दोनों के पूर्वज ही सिद्ध होते है। पुनः यापनीय आचार्य रविषेण और अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू द्वारा उनकी कृति का पूर्णतः अनुसरण करने पर भी उनके नाम का उल्लेख नहीं करना यही सूचित करता है कि वे उन्हें अपनी परम्परा का नहीं मानते थे। अतः सिद्ध यही होता है कि विमलसूरि श्वेताम्बर और यापनीय दोनों परम्परा के पूर्वज है। श्वेताम्बरों ने सदैव अपने पूर्वज आचार्यों को अपनी परम्परा का माना है। विमलसूरि के दिगम्बर होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यापनीयों ने उनका अनुसरण करते हुए भी उन्हें अपनी परम्परा का नहीं माना, अन्यथा रविषेण और स्वयम्भू कहीं न कहीं उनका नाम निर्देश अवश्य करते। पुनः यापनीयों की शौरसेनी प्राकृत को न अपनाकर अपना काव्य महाराष्ट्री प्राकृत में लिखना यही सिद्ध करता है कि यापनीय नहीं है।

अतः विमलसूरि की परम्परा के सम्बन्ध में दो ही विकल्प है। यदि हम उनके ग्रन्थ का रचनाकाल वीर निर्वाण सम्वत् ५३० मानते हैं तो हमें उन्हें श्वेताम्बर और यापनीयों का पूर्वज मानना होगा। क्योंकि श्वेताम्बर दिगम्बरों की उत्पत्ति वीर निर्वाण के ६०६ वर्ष बाद और दिगम्बर श्वेताम्बरी की उत्पत्ति वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद ही मानते है। यदि हम इस काल को वीर निर्वाण सम्वत् मानते है, वे श्वेताम्बरों और यापनीयों के पूर्वज सिद्ध होगे और यदि इसे विक्रम संवत् मानते है तो जैसा कि कुछ विद्वानों ने माना है, तो उन्हें श्वेताम्बर आचार्य मानना होगा।

C/o. प्राच्यविद्यापीठ
शाजापुर (म.प्र.)